दैनिक जागरण
भक्ति हृदय की पुकार और मुक्ति का द्वार है

आरक्षण पर बहस

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर से यह कहा जाना कोई नई बात नहीं कि समाज में जब तक आर्थिक असमानता है तब तक आरक्षण जारी रहना चाहिए। संघ के सह सरकार्यवाह दत्तात्रेय होसबले की ओर से यह बात शायद इसलिए कही गई, क्योंकि चंद दिनों पहले मोहन भागवत ने आरक्षण की समीक्षा की जरूरत जताई थी। वह पहले भी कई बार आरक्षण की समीक्षा की जरूरत जता चुके हैं, लेकिन वह जब भी ऐसा करते हैं तब कई दल और सामाजिक संगठन यह शोर मचाने लगते हैं कि संघ आरक्षण को खत्म करना चाहता है। यही नहीं, संघ के साथ ही भाजपा को भी आरक्षण विरोधी करार देने की कोशिश होने लगती है। जब ऐसा होता है तो भाजपा भी रक्षात्मक मुद्रा में आ जाती है और इसी के साथ आरक्षण की समीक्षा का सवाल पीछे छूट जाता है। ऐसा शायद इसलिए भी होता है, क्योंकि आरक्षण वोट बैंक की राजनीति का हथियार बन गया है। आखिर जब अन्य संवैधानिक प्रावधानों की समय-समय पर समीक्षा हो सकती है और जरूरत पड़ने पर उनमें संशोधन हो सकता है तो फिर आरक्षण के संदर्भ में ऐसा क्यों नहीं हो सकता? समझना कठिन है कि इसमें क्या हर्ज है कि एससी-एसटी आरक्षण के साथ अन्य पिछड़े वर्गों को मिल रहे आरक्षण की समीक्षा इस उद्देश्य से की जाए कि वह और अधिक प्रभावी एवं उपयोगी कैसे हो सके?

क्या आज यह नहीं देखा जाना चाहिए कि जो वर्ग आरक्षण के दायरे में हैं वे उससे उचित रूप से लाभान्वित हो सके हैं या नहीं? निःसंदेह यह भी देखे जाने की जरूरत है कि केवल पात्र लोगों को ही आरक्षण कैसे मिले? यह इसलिए आवश्यक है, क्योंकि आरक्षण का लाभ उठा चुके लोगों के परिजन भी उसका फायदा उठाने में लगे हुए हैं। क्रीमी लेयर की व्यवस्था ने इसे और आसान बना दिया है, लेकिन शायद ही कोई दल हो जो क्रीमी लेयर को तार्किक बनाने की वकालत करता हो। बेहतर होगा कि आरक्षण की समीक्षा के तौर-तरीकों पर बहस शुरू हो। आरक्षण शोषित-वंचित तबकों और पिछड़े वर्गों को सामाजिक तौर पर आगे लाने वाली व्यवस्था है, लेकिन बीते कुछ सालों में यह धारणा बन गई है कि यह सरकारी नौकरी पाने का जरिया है। दत्तात्रेय होसबले ने आरक्षण की समीक्षा के सवाल पर यह सही कहा कि यह निर्णय लेना इससे जुड़े लोगों और नीति-निर्धारकों का काम है, लेकिन इसमें संदेह है कि हमारा राजनीतिक वर्ग इसके लिए सहमत हो पाएगा। इसके बावजूद उससे यह तो अपेक्षित है ही कि वह निर्धनता निवारण के उपायों पर ज्यादा जोर दे, क्योंकि तमाम तरक्की के बावजूद भारत में गरीबों की अच्छी-खासी संख्या है।

समर्थ होंगे शिल्पकार

झारखंड के कारीगरों, बुनकरों और शिल्पकारों को ग्लोबल बाजार उपलब्ध कराने की दिशा में ई कॉमर्स कंपनी फ्लिपकार्ट से सरकार का करार एक अच्छी पहल है। वह दिन दूर नहीं जब फ्लिप कार्ट पर झारखंड के ढोल-नगाड़े, मांदर, तीर-धनुष, बांस की टोकरी, मूर्तियां, मिट्टी के बर्तन और ढोकरा कला से शृंगारित धातु की मूर्तियों समेत अन्य सजावटी सामान भी फ्लिपकार्ट पर उपलब्ध होंगे। यह पहल कारीगरों को बाजार, सम्मान और अच्छा दाम उपलब्ध कराने के साथ साथ झारखंड के पारंपरिक कला कौशल को पहचान दिलाने वाली भी साबित होगी। अगर सबकुछ ठीक रहा तो समर्थ नाम की यह योजना झारखंड के स्थानीय हुनरमंदों के लिए वरदान साबित हो सकता है। हां, इतना जरूर हो कि कम पढ़े-लिखे और तकनीकी ज्ञान से अनभिज्ञ शिल्पकारों को इस मंच का सदुपयोग सिखाने पर भी सरकार को जोर देना चाहिए। यह भी ध्यान रखना होगा कि यहां उनके उत्पादों की बिक्री करने वाले बिचौलिये तैयार न होने पाएं। झारखंड के गांव-गांव और सुदूर आदिवासी इलाकों में भी परंपरागत शिल्प बिखरा पड़ा है, लेकिन हमेशा से बाजार न मिलना यहां के कारीगरों-शिल्पकारों के लिए एक बड़ी समस्या रही है। बारीक-महीन और शानदार कारीगरी से बनी वस्तुएं जहां औने-पौने दाम में बेचना कारीगरों की विवशता रही है साथ ही परंपरा और शिल्प के ये चितेरे फटेहाल जिंदगी जीने को विवश हैं। अच्छी बात यह है कि सरकार ने इस समस्या को शिद्दत से महसूस किया है। सरकार पहले भी कारीगरों के लिए औद्योगिक सहकारी समितियों, झारक्राफ्ट, माटी कला बोर्ड जैसी एजेंसियों का गठन कर और कारीगर पंचायत जैसे आयोजन कर इस दिशा में अपनी इच्छाशक्ति दिखा चुकी है। अब समय की मांग को देखते हुए इसे ई-कॉमर्स से जोड़ा गया है। तेजी से पांव पसार रहा ई-कॉमर्स कारीगरों को बड़ा बाजार उपलब्ध कराएगा। झारखंड के लोग परंपरागत रूप से बांस पर कारीगरी करने, मिट्टी, रेशे, लताओं और धातु के सुंदर बर्तन बनाने, पत्थरों और दीवारों पर चित्रकारी करने, लकड़ियों के खिलौने बनाने, मुखौटे, वाद्ययंत्र, मूर्तियां और अन्य सजावटी सामान, पारंपरिक हथियार, वाद्ययंत्र, टोकरी, आभूषण आदि बनाने के लिए मशहूर हैं। इनकी मेहनतभरी और प्रकृति तथा परंपरा में रसी-पगी कारीगरी का सौंदर्य भी अद्भुत है। हस्तशिल्प के क्षेत्र से जुड़े कारीगरों का रजिस्ट्रेशन करने का भी सरकार का निर्णय सराहनीय है।

मंदी को मात देने के उपाय

डॉ. भरत झुनझुनवाला

केंद्र सरकार को चाहिए कि वह सरकारी खपत पर नियंत्रण करे और निवेश बढ़ाए, निवेश करने के लिए कर्ज लेना नुकसानदेह नहीं

अवधेश राजपूत

आर्थिक मोर्चे पर सुस्ती के बीच उससे निपटने के उपायों पर चर्चा और साथ ही अमल भी आवश्यक है। सरकार ने हाल में कुछ छोटे बैंकों का विलय कर बड़े सरकारी बैंक बनाने की दिशा में कदम बढ़ाए ताकि उनकी क्षमता बढ़ सके। यह स्वागतयोग्य है, पर इससे आगे जाने की जरूरत है। पिछले दो वर्षों में सरकार ने 250 हजार करोड़ रुपये इन बैंकों में डालने की योजना बनाई है। इसकी तुलना में आज इन बैंकों की कुल बाजार हैसियत ही मात्र 230 हजार करोड़ रुपये है। यानी इनके पास पूंजी का मौजूदा स्तर नकारात्मक है। सरकार ने दो वर्षों में जो पैसा इन बैंकों को दिया, उसे भी ये सहेजकर नहीं रख पाए हैं। ऐसे में सरकार को चाहिए कि वह भारतीय स्टेट बैंक को छोड़कर शेष सभी सरकारी बैंकों का निजीकरण कर दे। तब सरकार करीब 230 हजार करोड़ रुपये की भारी रकम अर्जित कर सकेगी। इस रकम का उपयोग सेवाओं के निर्यात बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। जैसे हर जिले में विदेशी भाषाओं को पढ़ाने के केंद्र बनाए जाएं। भारत के अध्यापकों को सब्सिडी देकर दुनिया भर के संस्थानों में पढ़ाने के लिए भेजा जाए, भारत में विदेशी भाषाओं की फिल्में बनाने जैसे दांव आजमाए जा सकते हैं। इससे सरकार को बैंकों में लगातार पूंजी डालने के सिरदर्द से मुक्ति मिलेगी और हमारे सेवा क्षेत्र का विकास होगा।

दूसरा उपाय, निवेश के लिए कर्ज लेने का है। राजग सरकार ने बीते पांच वर्षों में वित्तीय घाटे पर नियंत्रण करने में बड़ी सफलता हासिल की है। वर्ष 2013-14 में सरकार का वित्तीय घाटा 4.4 प्रतिशत था जो 2018-19 में 3.4 प्रतिशत रह गया। वित्तीय घाटा वह रकम होती है जो सरकार द्वारा बाजार से उधार लेकर खर्च की जाती है। वित्तीय घाटे में कटौती का अर्थ है कि सरकार अपने खर्चों पर नियंत्रण कर रही है और उधार कम ले रही है। यह अर्थव्यवस्था की स्थिरता के लिए जरूरी भी है, अन्यथा महंगाई बढ़ती है और निवेशक निवेश करने से कतराते हैं, मगर इससे बढ़कर कदम उठाने होंगे। सरकार ने वित्तीय घाटे में जो कटौती हासिल की है उसमें तीन चौथाई हिस्सा पूंजी खर्चों में कटौती का है और एक चौथाई हिस्सा सरकार की खपत में कटौती का। सरकार ने अपनी खपत को स्थिर बनाए रखा और पूंजी निवेश कम कर दिया-ठीक वैसे ही जैसे दुकानदार ने घर में एयर कंडीशनर लगाए रखा और दुकान से हटा दिया। सरकार के खर्चों की दिशा का अर्थव्यवस्था पर सीधा असर पड़ता है।

सरकार की खपत में कर्मियों को दिया जाने वाला वेतन प्रमुख होता है। यदि सरकार कर्मियों को बढ़ा-चढ़ाकर वेतन देती है तो इसका अधिकांश हिस्सा सोना खरीदने में, विदेशों में निवेश करने में, विदेशी पर्यटन में अथवा विदेशी माल खरीदने में व्यय हो जाता है और यह रकम देश से बाहर चली जाती है यानी हमारी अर्थव्यवस्था के गुब्बारे से हवा निकल जाती है। इसलिए सरकार को चाहिए कि वह सरकारी खपत पर नियंत्रण करे और निवेश बढ़ाए। निवेश करने के लिए कर्ज लेना नुकसानदेह नहीं होता, क्योंकि उद्यमी कर्ज लेकर दुकान लगाता है। समस्या तब होती है जब कर्ज लेकर खपत की जाती है। इसलिए सरकार को इस समय दो काम करने चाहिए। एक, सरकारी खपत को फ्रीज कर देना चाहिए। सरकारी कर्मियों के वेतन भी फ्रीज कर देने चाहिए। दूसरा, निवेश करने के लिए विशेष प्रकोष्ठ बनाकर निवेश बढ़ाना चाहिए। तीसरे उपाय के तहत आयात कर बढ़ाया जाए।

सरकार ने छोटे उद्योगों को कर्ज मुहैया कराने के लिए कई कदम उठाए हैं। जीएसटी में रिटर्न भरना भी सरल किया गया है। इन कदमों का स्वागत है, लेकिन सिर्फ इतने से ही बात नहीं बनेगी। छोटे उद्योगों की समस्या है कि चीन से आ रहे माल के सामने वे टिक नहीं पा रहे हैं। चीन में श्रमिकों को रखने और निकालने की छूट है जिससे श्रमिक कड़ी मेहनत करते हैं और भारतीय श्रमिक की तुलना में दो गुना उत्पादन करते हैं। इसलिए चीन का माल हमसे सस्ता पड़ता है। छोटे उद्योगों को बचाने के लिए जरूरी है कि चीन से आयात होने वाले सामान पर आयात कर बढ़ाया जाए जोकि मुख्य रूप से छोटे उद्योगों द्वारा बनाए जाते हैं। इससे छोटे उद्योगों को बड़ा सहारा मिलेगा। इनके द्वारा अधिक श्रमिकों को रोजगार दिया जाएगा और बाजार में मांग बढ़ेगी और मंदी टूट जाएगी।

चौथा उपाय यह हो सकता है कि छोटे उद्योगों को जीएसटी में छूट दी जाए। इन उद्योगों की एक समस्या यह है कि कंपाउंडिंग स्कीम में उनके द्वारा अपने इनपुट पर अदा किए गए जीएसटी का रिफंड नहीं मिलता है। इस कारण बड़े उद्योग के लिए यह लाभप्रद होता है कि वह दूसरे बड़े उद्योग से माल खरीदे न कि दूसरे छोटे उद्योग से। यदि एक बड़ा उद्योग दूसरे बड़े उद्योग से माल खरीदता है तो बेचने वाले बड़े उद्योग द्वारा अपने इनपुट पर दिए गए जीएसटी का सेटऑफ खरीदने वाले बड़े उद्योग को मिल जाता है, लेकिन यदि वही बड़ा उद्योग वही माल किसी छोटे उद्योग से खरीदता है तो बेचने वाले छोटे उद्योग द्वारा अपने इनपुट पर अदा किए गए जीएसटी का सेटऑफ खरीदने वाले बड़े उद्योग को नहीं मिलता है। इसलिए बड़े उद्योगों की प्रवृत्ति बनी है कि वे दूसरे बड़े उद्योगों से ही माल खरीदें। इस समस्या का उपाय है कि छोटे उद्योगों द्वारा इनपुट पर अदा किए गए जीएसटी का उन्हें नकद रिफंड दिया जाए। तब ही कंपोजीशन स्कीम के अंतर्गत उन्हें लाभ होगा।

पांचवां उपाय सरकारी शिक्षा के निजीकरण के रूप में किया जा सकता है। सरकार ने उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थाओं में ईमानदार व्यक्तियों को शीर्ष पदों पर नियुक्त किया है। यह स्वागतयोग्य है, लेकिन इन संस्थाओं में सामान्य अध्यापक अथवा वैज्ञानिक की प्रवृत्ति में इससे तनिक भी अंतर नहीं आया है। सामान्य अध्यापकों को वेतन मिलना सुनिश्चित है, भले ही वे पढ़ाएं या न पढ़ाएं। यहां कोचिंग का सहारा है। यह व्यवस्था केवल शीर्ष पर ईमानदार व्यक्तियों की नियुक्ति से ही नहीं सुधरेगी। इसके लिए जरूरी है कि सरकार समूचे सरकारी शिक्षातंत्र का निजीकरण कर दे और अर्जित रकम तथा हर वर्ष व्यय होने वाली रकम से देश के सभी युवाओं को मुफ्त वाउचर बांटे जिससे वे अपने मनचाही शैक्षणिक संस्था में प्रवेश ले सकें। तभी संस्थानों में होड़ शुरू होगी कि अधिक से अधिक वाउचर इकट्ठा करें। इससे कॉलेजों का स्तर सुधरेगा। इस कदम का विशेष प्रभाव सेवा क्षेत्र पर पड़ेगा। आने वाले समय में मैन्यूफैक्चरिंग में रोजगार कम बनेंगे और सेवा क्षेत्र में ज्यादा अवसर बढ़ेंगे। यदि हमारी उच्च शिक्षा व्यवस्था सुचारू रूप से चलने लगे तो हमारे युवा ऑनलाइन ट्यूशन, अनुवाद, स्वास्थ्य पर्यटन इत्यादि तमाम क्षेत्रों में विश्व को सेवा प्रदान कर सकेंगे और मंदी को मात दी जा सकेगी। यदि उपरोक्त कदमों को लागू कर दिया जाए तो महज एक साल में हमारी आर्थिक विकास दर दस प्रतिशत के आसपास पहुंच सकती है।

(लेखक वरिष्ठ अर्थशास्त्री एवं आइआइएम बेंगलूर के पूर्व प्रोफेसर हैं)

response@jagran.com

कश्मीरियत को बहाल करने की जरूरत

उदय प्रकाश अरोड़ा

कश्मीरी यह याद रखें तो बेहतर कि भारत में हिंदू-मुस्लिम एकता का काम कश्मीर से प्रारंभ होता है

दूसरी बार प्रधानमंत्री बनने के बाद नरेंद्र मोदी ने अपने प्रारंभिक भाषण में अल्पसंख्यकों के पिछड़ेपन को दूर करने पर भी जोर दिया था और हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रश्न को भी उठाया था। एक अन्य संबोधन में उन्होंने आजादी से पूर्व मुस्लिम समाज ने एकता के लिए जो कार्य किए उनका भी स्मरण किया और 1857 के उस संग्राम का जिक्र किया, जिसमें मुसलमानों ने हिंदुओं के साथ मिलकर आजादी की लड़ाई का प्रथम बिगुल बजाया था। दिल्ली अल्पसंख्यक आयोग, जमीयत-ए-उलेमा हिंद के सदस्यों और अनेक विख्यात मुसलमानों ने प्रधानमंत्री मोदी की उन बातों की प्रशंसा की। देखा जाए तो हिंदू-मुस्लिम एकता, एक ऐसा प्रश्न है, जिसे आजादी से पहले देश के लगभग सभी नेताओं ने महत्व दिया। हाल में कश्मीर के संदर्भ में लिए गए फैसलों को देखते हुए इस प्रश्न को नए सिरे से महत्व दिया जाना चाहिए। यह शुभ संकेत है कि आरएसएस और जमीयत मिलकर इस दिशा में पहल कर रहे हैं। यह पहले कश्मीर से हो तो और बेहतर।

एक समय स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि मातृभूमि की आजादी के लिए हिंदू-मुस्लिम धर्म का संगम होना अति आवश्यक है। उनके अनुसार, वेदांत के मस्तिष्क और इस्लाम के शरीर के मिलन के बिना भारत का उद्धार होना संभव नहीं है। गांधी जी से जब पूछा गया कि हिंदुस्तान की कौन-सी समस्या है जिसे वह सबसे पहले सुलझाना चाहेंगे तो उनका कहना था कि जब-तक इस मुल्क में हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित नहीं हो जाती उन्हें आगे जाने का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। दुख की बात है कि आजादी के पहले हजारों राष्ट्रीय नेताओं ने हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए जो कोशिशें की थीं, आजादी आने तक वे छिन्न-भिन्न हो गईं। इसका कारण यह था कि मुस्लिमों का एक वर्ग इस बात पर जोर देने लगा कि हिंदू और मुस्लिम दो अलग-अलग राष्ट्र बनते हैं अतः धर्म के आधार पर दो राष्ट्रों का विभाजन होना चाहिए। जब ऐसी बातें की जा रही थीं तो कश्मीरी भारत के साथ खड़े थे। वास्तविकता यह है अधिकांश उलेमा ने विभाजन को स्वीकार नहीं किया था। देवबंदी स्कूल के उलेमा ने विभाजन का विरोध कर कांग्रेस का खुलकर साथ दिया। बलूच और पश्तून विभाजन नहीं चाहते थे। फिर भी अनेक कारणों से विभाजन को टाला नहीं जा सका। 1943 तक तो विभाजन का सिद्धांत असहनीय था, किंतु कुछ मुस्लिम नेताओं के कारण ऐसा न हो सका। प्रसिद्ध इस्लामी विद्वान मौलवी वहीदुद्दीन लिखते हैं, 'मुसलमानों की शिकायतें निरंतर बढ़ती गईं। 1947 में जब देश आजाद होने वाला था तब मुसलमानों ने 14 मांगों की लंबी सूची बनाई। आजादी के बाद यह सूची बढ़कर 25 हो गई। विभाजन के पहले, विभाजन के समय और विभाजन के बाद भी मुस्लिम समाज सदैव मांग ही करता रहा। इतिहास इस बात का साक्षी है कि कोई भी संगठन एक साथ देने और लेने का कार्य नहीं कर सकता। यदि आप राष्ट्र को कुछ दे नहीं सकते तो आपको मांगने का कोई हक नहीं बनता।' मौलाना वहीदुद्दीन का मानना है कि भारत में मुसलमान मांगे ही रखते हैं, वे राष्ट्र को क्या योगदान दे सकते हैं, इसके विषय में उन्होंने कभी नहीं सोचा। अल्पसंख्यकों में पारसी समुदाय को ही लें। उन्होंने कभी कोई शिकायत नहीं रखी। परिश्रम करते रहे। आज देश का वह सबसे अधिक समृद्ध समुदाय है। टाटा, भाभा, पालकीवाला जैसी अनेक कर्मठ विभूतियों ने पारसियों का गौरव बढ़ाया है।

जिस कश्मीर की आज बहुत चर्चा है उसके बिना क्या हिंदुस्तान की कल्पना संभव है? कश्मीर भारत का सिरमौर है। सूफीमत ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की खाई को पाटकर भारत की एकता को सुदृढ़ किया है। भारत की सूफी परंपरा इस्लाम, शैव भक्ति और वेदांत का मिश्रण है। भारत में हिंदू-मुस्लिम एकता का काम कश्मीर से प्रारंभ होता है। कश्मीर के मुसलमानों को याद रखना चाहिए कि हिंदू धर्म के प्रभाव से सूफियों की एक नई धारा ने भारत में जन्म लिया, जिसे 'ऋषि शृंखला' के नाम से जाना जाता है। शैव धर्म, सूफियों की ऋषि शृंखला और कश्मीर में विकसित संस्कृत भाषा ने मिलकर जिस कश्मीरियत को जन्म दिया उसके बिना भारतीय संस्कृति के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भारत का धर्म सबको जोड़ने में विश्वास रखता है अलगाव करने में नहीं। यही वजह है कि भारत का प्रबुद्ध वर्ग यह मानता है कि किसी भी अल्पसंख्यक समाज को भारत में चिंता करने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि देश की बहुसंख्यक हिंदू जनता हमेशा से सहिष्णु और उदार रही है। हिंदू-मुस्लिम एकता को मजबूत करने के लिए जिन विद्वानों का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है उनमें कश्मीरी पंडित सबसे महत्वपूर्ण माने जाते हैं। घाटी के शरणार्थी के रूप में जो आज कश्मीरी पंडित हैं वे उन्हीं पाणिनी, पतंजलि, चरक, कालिदास, कल्हण, बिल्हण, अभिनव गुप्त, क्षेमेंद्र, आनंदवर्धन और वामनाचार्य की संतान हैं जिन्होंने कश्मीर में रहकर ही संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाया। कश्मीर के लिए कल्हण द्वारा लिखे ग्रंथ राजतरंगिणी को भारत में इतिहास का सर्वप्रथम ग्रंथ माना जाता है। कहा जाता है कि संस्कृत उच्च वर्ग के विद्वानों की भाषा रही है। वह आम जनता में प्रचलित नहीं थी। कश्मीर इसका अपवाद रहा। जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार 2000 वर्ष तक कश्मीर में संस्कृत जनता की बोलचाल की भाषा थी। 8वीं से 15वीं शताब्दी के बीच कश्मीर के 13-14 विद्वानों ने जो लिखा था वह समूचे संस्कृत साहित्य का आधे भाग से भी अधिक है। अलंकार शास्त्र, नाट्यशास्त्र, कृषिशास्त्र, चिकित्सा विज्ञान, वास्तु विज्ञान और नक्षत्र विज्ञान के विकास में कश्मीरी विद्वानों का योगदान सबसे अधिक था।

भारत आने पर पश्चिम के विद्वानों ने संस्कृत अध्ययन के लिए जिन विद्वानों की सहायता ली उनमें कश्मीर के गोविंद, नित्यानंद शास्त्री, मुकुंदराम शास्त्री, प्रो. जगधर, पं. दामोदर भट्ट और आनंद कौल प्रमुख थे। इस्लामी और हिंदू, दोनों संस्कृतियों का कश्मीर गढ़ रहा है। कश्मीर में विकसित शैव धर्म आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक भारत का सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक और धार्मिक आंदोलन था। इस प्रकार देखा जाए तो भारत की हिंदू-मुस्लिम एकता कश्मीर से ही प्रारंभ होती है।

(लेखक जेएनयू के पूर्व ग्रीक चेयर प्रोफेसर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

समस्या और समाधान

प्रत्येक व्यक्ति के पास समस्या होती है। कई बार इनके समाधान के लिए उसे कोई मार्ग नजर नहीं आता। ऐसे में वह किसी ऐसे करीबी की मदद लेना उचित समझता है जो उसकी सहायता कर सके, लेकिन संबंधी या मित्र समाधान के लिए या तो हाथ खड़े कर लेते हैं या ऊपरी सलाह देकर छुट्टी पा लेते हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि हम अपने मित्र अथवा संबंधी को केवल यह अहसास कराते हैं कि समस्या सिर्फ हमारी है, उसका उनसे कुछ लेना-देना नहीं है। जिस वस्तु अथवा कार्य से किसी का कुछ लेना-देना नहीं होता, वे उस बारे में देखना भी पसंद नहीं करते। इसलिए किसी भी समस्या का समाधान मांगते समय सामने वाले को सदैव यह महसूस कराना चाहिए कि यह उनकी भी समस्या है। हम सभी की संरचना इस प्रकार से बनी हुई है कि हम सामने वाले के बजाय अपनी समस्याओं में अधिक दिलचस्पी लेते हैं तो ऐसा ही दूसरा व्यक्ति भी करेगा। समझदार व्यक्ति समस्या उत्पन्न करने वालों से ही समाधान निकलवा लेते हैं और जीवन को सहज बना लेते हैं।

एक बार मैरीनेट, विस्कांसिन की असुंल केमिकल कंपनी के प्रमुख रॉबर्ट सी हुड के सामने सभी प्रमुख विभागों की लागत कम करने की समस्या आई। उन्होंने इसकी पूरी जिम्मेदारी अपने कर्मचारियों पर छोड़ दी। फिर कंपनी के सभी सदस्यों ने अधिक लागत वाले कार्यों का हिसाब बनाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उन्होंने यात्रा, टेलीफोन, तार, कच्चे माल यहां तक कि टिकट के उपयोग में भी पैसे बचाने के उपाय ढूंढ लिए। ऐसा केवल इसलिए हो पाया, क्योंकि रॉबर्ट ने समस्या के समाधान के लिए कंपनी के सभी लोगों को इसमें शामिल होने के लिए कहा। यदि वे उन्हें समस्या उत्पन्न करने के लिए ताने कसते रहते तो निश्चित ही कई कर्मचारी न केवल कंपनी छोड़ जाते, बल्कि जो काम करने वाले थे वे भी उत्साह से क्षीण पड़ जाते। इसलिए किसी भी समस्या को हल करने के लिए व्यक्ति को यह अहसास कराएं कि वह अपनी बुद्धि से हर समस्या को हल कर सकता है।

रेनू सैनी

सहिष्णुता के प्रतीक थे दारा शिकोह

स्वदेश सिंह

अगर दारा हिंदुस्तान का बादशाह बनते तो पूरे देश में हिंदू-मुस्लिम एकता को एक बड़ा वैचारिक आधार मिलता

भारत ज्ञान परंपरा का देश है। एक ही एकता को विविध रूप में देखना, जानना, मानना और उनमें समन्वय स्थापित करना यहां का प्रमुख गुण रहा है। भारतीय सभ्यता के इस मर्म को मध्यकाल में शहजादा दारा शिकोह ने बखूबी समझा था। उन्होंने इस्लाम और हिंदू धर्म में समानता वाले तत्वों को खोजा और एक नई बहस शुरू की। दारा शिकोह की वजह से ही भारतीय दर्शन पश्चिमी देशों तक पहुंच सका। दारा शिकोह के अलावा भी ऐसे कई सूफी, विद्वान, कवि, लेखक और नेता हुए जिन्होंने भारत से निकले हुए चिंतन, दर्शन और संस्कृति को समझने और आगे बढ़ाने की कोशिश की, लेकिन दारा एक ऐसी शख्सियत थे जो अगर अपने लक्ष्य में कामयाब हो जाते तो भारत का इतिहास दूसरा होता। दारा शिकोह को उनके छोटे भाई औरंगजेब ने सामूगढ़ की लड़ाई में 30 मई, 1658 को हरा दिया था और खुद बादशाह बन बैठा। औरंगजेब के शासनकाल में कट्टरपंथी तत्वों को बढ़ावा मिला जिससे हिंदुओं सहित अन्य सभी मतावलंबियों को भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ा।

अगर दारा हिंदुस्तान का बादशाह बनते तो पूरे देश में हिंदू-मुस्लिम एकता को एक बड़ा वैचारिक आधार मिलता और शायद अंग्रेजों को भी पैर पसारने की जगह ना मिलती। कट्टरपंथी इस्लाम की गैरहाजिरी में कभी ऐसी मांग भी ना उठती कि हिंदू और मुसलमान के नाम पर हिंदुस्तान के दो टुकड़े किए जाएं। सामूगढ़ की लड़ाई, पानीपत और प्लासी की जंग से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह सिर्फ उत्तराधिकार की लड़ाई नहीं, बल्कि भारत की आत्मा को बचाने की लड़ाई थी।

दारा शिकोह का साफ मानना था कि एक ही दैवीय शक्ति हर जगह विद्यमान है। उसे ही अलग-अलग नामों से जाना जाता है। दारा ने पहली रचना 25 साल की उम्र में की और अपनी हार से दो साल पहले अंतिम रचना की, लेकिन उनकी दो रचनाओं ने उस दौर में बड़ी बहस शुरू की थी जिसे आज फिर गहराई से पढ़े, समझे और प्रचारित किए जाने की जरूरत है। एक है मज्म-उल-बहरैन और दूसरी है सिर्रे-अकबर। मज्म-उल-बरहैन का अर्थ है दो समुद्रों का संगम। इस पुस्तक में हिंदू धर्म शास्त्र और कुरान का तुलनात्मक अध्ययन करके समानता वाले तत्वों को खोजा गया है। सिर्रे-अकबर का अर्थ है महानतम ज्ञान जिसमें उपनिषदों का अनुवाद किया गया है। दारा का कहना था कि कुरान में जिस एक गुप्त किताब (किताब-अल-मकनून) की बात कही गई है वह कोई और नहीं, बल्कि भारत के उपनिषद ही हैं। दारा शिकोह एक बेहतरीन लेखक, चिंतक, विचारक, दार्शनिक, सूफी, पेंटर और विद्वान थे जो मुगलिया तख्त के सबसे मजबूत दावेदार थे। इस्लामी परंपरा में पैदा हुए दारा शिकोह ने माना था कि आपसी समन्वय, समरसता और सहकार में ही आगे का रास्ता संभव है। दारा शिकोह हिंदू और इस्लामिक दर्शन के बीच की वह कड़ी हैं जो इस दौर में हिंदू-मुस्लिम एकता को एक वैचारिक आधार देने वाला बड़ा प्रकाश-स्तंभ बन सकते हैं।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र पढ़ाते हैं)

मेलबाक्स

आधा-अधूरा विश्लेषण

लोकतंत्र को चाहिए सशक्त संस्थाएं शीर्षक से लिखे अपने लेख में मनीष तिवारी ने बताया है कि किसी लोकतंत्र में यदि न्यायिक स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाएगी तो वहां उपद्रव, अशांति और अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। लेखक ने अपनी बात कहने के लिए जर्मनी में नाजी शासन के तमाम पहलुओं को उजागर किया है। साथ ही इटली में बेनितो मुसोलिनी की भूमिका पर चर्चा की है, रूस में तानाशाही के कारण उत्पन्न स्थिति का भी विश्लेषण किया है। यह विश्लेषण उन देशों के इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी है, किंतु इस लंबे तथा चिंतनशील लेख में यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि कहां के लोकतंत्र की सशक्त संस्थाएं संदेह के दायरे में आ रही हैं। भारत में तो अभी ऐसी कोई स्थिति नजर नहीं आ रही है। यहां आरंभ से ही न्यायिक संस्थाओं यानी पंचायतों और उनके नुमाइंदों को 'पंच परमेश्वर' के रूप में स्वीकार किया गया है। मुंशी प्रेमचंद की कहानी पंच परमेश्वर में लिखा है-पंच न किसी के दोस्त होते हैं न किसी के दुश्मन। स्वतंत्र भारत में अनेक अवसर ऐसे रहे जहां सत्ताधारी दलों ने अपने निहित स्वार्थों के लिए विभिन्न सशक्त संस्थाओं का दुरुपयोग किया, किंतु अब नए भारत में ये सशक्त संस्थाएं निष्पक्षता से अपना काम करते हुए दोषियों तथा भ्रष्टाचारियों के नाम सामने ला रही हैं। यह लोकतंत्र में संस्थाओं की सशक्तता का ही परिणाम है कि आज बड़े-बड़े, नामी लोग भी जेल की सलाखों के पीछे हैं। लेखक की पीड़ा के मूल में उनकी चिंता तो नहीं है, क्योंकि आज न तो न्यायिक स्वतंत्रता खतरे में है और न ही कहीं उपद्रव, अशांति और अराजकता की स्थिति नजर आ रही है।

डॉ. वेदप्रकाश, हंसराज कॉलेज, दिल्ली

डीयू में स्वच्छता

दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ का चुनाव चल रहा है। इन दिनों कॉलेज परिसरों का हाल बहुत खराब है। हालत यह है कि परिसर में फैलाई जा रही गंदगी किसी भी छात्र प्रतिनिधि का मुद्दा नहीं है। जिन्हें कल का भविष्य कहा जाता है वे आज भी स्वच्छता को लेकर जागरूक नहीं हैं। जगह-जगह पोस्टर चिपके हुए हैं। एक छात्र होने के नाते हमारी स्वच्छता की भी जिम्मेदारी होती है, लेकिन अगर यह हाल छात्र संघ में है तो बाकी आम चुनाव से इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। वहीं वोट मांगने के लिए आने वाले प्रतिनिधि से हर एक छात्र को संकल्प दिलवाना होगा कि वे हमारा परिसर गंदा न करें। अगर आज हमने यह आवाज नहीं उठाई तो यह सिलसिला चलता रहेगा।

आशीष, राम लाल आनंद कॉलेज, डीयू

भारत की बड़ी सफलता

लैंडर विक्रम से भले से संपर्क स्थापित नहीं हो पाया है, लेकिन ऑर्बिटर ने उसका पता लगा लिया है। लैंडर विक्रम चंद्रमा के धरातल पर विद्यमान है, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। यह भारत की बड़ी सफलता है। इससे संयुक्त राष्ट्र की स्थायी सदस्यता के लिए हमारा दावा और मजबूत हुआ है।

dharmendranath.rastogi@gmail.com

नहीं हारने वाला विक्रम

विक्रम नाम के दो व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने इतिहास में एक विशेष जगह बनाई है। एक विक्रम साराभाई विज्ञान और दूसरे विक्रम-आदित्य (राजा-विक्रमादित्य) जिनका कभी भी बेताल के सामने गलत जवाब नहीं निकला। यानी विक्रम कभी हारे नहीं फिर चाहे वे वैज्ञानिक हों या राजा। इसरो के अध्यक्ष के. सिवन ने भी विक्रम लैंडर को खोज लेने की बात कही है। उम्मीद है कि वह सही सलामत होगा।

mahesh_nenava@yahoo.com

महंगाई का सच

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने कहा है कि 2014 के बाद महंगाई में वृद्धि नहीं हुई है। उनका यह कथन गले नहीं उतरता है। आज हर वस्तुओं में महंगाई की आग लगी हुई है। चाहे पेट्रोल-डीजल के दाम हों, खानपान की वस्तुओं के दाम हों या अन्य चीजों के। सांसदों, विधायकों, मंत्रियों को क्या मालूम कि महंगाई क्या है? क्योंकि इन्हें सरकार से इतनी सुविधाएं मिलती हैं कि पैसा कहां से आ रहा है कहां जा रहा है, पता ही नहीं चलता है। उन्हें इस मुद्दे पर पर्दा डालने के बजाय सच्चाई को स्वीकारने की जरूरत है।

hemahariupadhyay@gmail.com

इस स्तंभ में